Vol. 12
Issue 1&2
15 July 2021
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
शोध संचयन

प्राचीन सिक्कों की निर्माण पद्धति में भारतीय एवं विदेशी तत्वों की भूमिका।

बीज शब्द :

प्रचीन सिक्के, लौह तकनीकी, सिक्का निर्माण पद्धति, मौद्रिक अर्थव्यवस्था, अहत सिक्के, मौद्रिक कला

छठीं शताब्दी ईसा पूर्व में लौह तकनीक के विकास के फलस्वरूप आये सकारात्मक आर्थिक परिवर्तनों ने प्राचीन भारतीय अर्थव्यवस्था के विभिन्न आयामों को प्रभावित किया। निर्वाह अर्थव्यवस्था का मौद्रिक अर्थव्यवस्था में परिवर्तन इसी का प्रतिफल था। इस मौद्रिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत जिन सिक्कों का निर्माण किया गया उन्हें निर्माण तकनीकी के आधार पर आहत सिक्कों का नाम दिया गया। मुद्रा प्रचलन की देशी विधि में, जो आहत सिक्कों में देखने को मिलती है, शासकों का नाम या उनकी आकृति अंकित नहीं होती। इसलिए आहत सिक्कों के स्वरूप को लेकर प्रारम्भिक विद्वानों में मतभेद था। कनिंघम, व्हाइटहेड व मैकडोनाल्ड के अनुसार यह मौद्रिक कला के शैशव कालीन सिक्के समस्त सिक्कों में साधारणतम थे। किन्तु एलन4 का विचार है कि वे प्रारम्भिक सिक्कों से कहीं अधिक बढ़ चढ़ कर थे। विंसेन्ट स्मिथ की राय है कि हिमालय से कन्याकुमारी तक उनकी शैली एवं भारक्रम में गजब की एकरूकता थी। कनिंघम, व्हाइटहेड तथा मैक्डोनाल्ड जैसे विद्वानों का नजरिया सिक्के के पूर्ण विकसित पाश्चात्य परम्परा के सन्दर्भ में बताया गया दृष्टिकोण था। भारत में जब से विदेशी परम्पराओं के सिक्के हिन्द-यवन, शक, पह्लव, कुषाण और रोमन सिक्कों के रूप में प्राप्त होने लगते हैं, तब से यह बात हो जाती है कि विदेशी परम्परा के अन्तर्गत सिक्का चलवाना राजा का ही विशेषाधिकार था, उस पर उसका नाम, उसकी उपाधि और अधिकांशतः उसका चित्र भी अंकित होना अनिवार्य था।

*****

डॉ. सुबोध कुमार मिश्र
एम0पी0 पी0जी0 कालेज,
जंगल धूषण, गोरखपुर

प्राचीन सिक्कों की निर्माण पद्धति में भारतीय एवं विदेशी तत्वों की भूमिका।

इन प्राचीन सिक्कों की निर्माण प्रक्रिया में अपनायी गयी योजनाओं में एकरूपता का अभाव था; यही कारण है कि इनके आकार, प्रकार, धातु अंश के मिश्रण आदि में भिन्नता है। इससे एक निष्कर्ष यह भी निकलता है कि इन सिक्कों का निर्माण किसी एक शासन सत्ता द्वारा नहीं कराया गया था, अन्यथा इनके आकार-प्रकार एवं धातु अंश के मिश्रण में समानता अवश्य होती। ऋग्वेद, मैत्रेयीसंहिता, तैत्तिरीय संहिता आदि में मर्माण शब्द का प्रयोग धातु कर्मी के लिए, ऋग्वेद में ध्यमत्रि शब्द का प्रयोग धातु को गलाने वाले व्यक्ति के लिए किया गया है। इसी वेद में 'आयोहत' शब्द का प्रयोग हथौड़े के लिए किया गया है। इसी क्रम में यदि आहत सिक्कों की निर्माण प्रक्रिया पर ध्यान दिया जाय तो उसमें प्रयुक्त किया जाने वाला प्रमुख उपकरण आयोहत अथवा हथौड़ा ही था जिससे धातुओं को ठोंक पीट कर उन्हें एक गोल आकार की मुद्रा का रुप दिया जाता था। उल्लेखनीय है कि वैदिक युगीत शतमान नामक स्वर्णखण्ड आहत सिक्कों के ही तरह गोल था, जिसका भार 100 कृष्णल अथवा 175 ग्रेन माना गया है। इसके अतिरिकत निष्क, सुवर्ण, शतमान का उल्लेख आभूषण के रुप में नहीं बल्कि पुरोहितों या विद्वानों को पारिश्रमिक या उपहार के रूप में दिये जाने का उल्लेख है। पुरोहितों या विद्वानों को दिया जाने वाला पारिश्रमिक या उपहार का आभूषण के रूप में न होना तथा इसी क्रम में पणियों के खजानों का उल्लेख यह दोनों बातें आभूषण से अलग किसी मुद्रा आकार की ओर संकेत करती हैं। ऋग्वेद में कहा गया है कि पणियों की निधि अद्रिबुध्न या पर्वतीय शिलाओं के नीचे छिपी हुई है, जिसकी रखवाली में पणिगण तत्पर है और इसे बैलों, घोड़ो ओर गधों पर लाद कर ले जाने योग्य बताया गया है।[6] ऋग्वेद में ही एक स्थान पर पणियों की निधि को परम गुफा में निहित होने की बात कही गयी है।[7] एक स्थान पर 'सुनरंवसु' या आसानी से ढोये जा सकने वाले धन की बात कही गयी है।[8] इस साहित्यिक प्रसंगों के आधार पर आहत मुद्रा निर्माण तकनीकी को वैदिक कालीन मानना तार्किक प्रतीत होता है। अनेक विद्वानों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। आहत सिक्के स्वर्ण या रजत जैसी कीमती धातुओं से काटकर निकाले जाते थे। उल्लेखनीय है कि वैदिक काल में स्वर्ण शलाकाओं का प्रचलन था, जिनसे समयानुसार छोटे-छोटे टुकड़े माप और भार के अनुसार निकाले जाते थे। यह कहना भी तर्कसंगत प्रतीत होता है कि इन्ही स्वर्ण शलाकाओं से ही निकाले गये टुकड़े आहत सिक्के के रूप में विकसित हुए होंगे। आहत सिक्कों में किसी तरह का लेख उपलब्ध नहीं है, लेकिन इन सिक्कों में कुछ प्रतीक चिह्न अंकित हैं। इन सिक्कों की निर्माण विधि में भिन्नता के कारण सिक्कों के आकार-प्रकार में भी भिन्नतायें थीं लेकिन वर्णाकार, कोणाकार, मिश्रित आकार के सिक्के की बहुलता थी।

मुद्रा निर्माण विधि- प्राचीन भारतीय इतिहास में मुद्र निर्माण की तीन विधियाँ प्रचलित थीं -

1. आहत प्रणाली
2. ढलुआ प्रणाली
3. ठप्पा प्रणाली

मुद्रा निर्माण की आहत प्रणालीः-

यह प्रणाली अति प्राचीन है, इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम जिस धातु से मुद्रा निर्माण करना होता था उस धातु को भट्ठी में गरम करके एक चद्दर या पत्तर तैयार की जाती थी इसके उपरान्त मानक वजन के बराबर चौकोर टुकड़े काट लिए जाते थे। धातु के कटे हुए चौकोर टुकड़े को उचित वजन के रूप में बनाने के लिए उनके कोनों को काटा जाता था। वजन को समान बनाने हेतु उन कोनों को काट दिये जाने के कारण वजन तो बराबर हो जाता था लेकिन आकार में भिन्नता आ जाती थी। यहाँ पर यह प्रश्न उठता है कि वजन को समान बनाने अर्थात् वजन प्रणाली अपनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी? मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि इस संदर्भ में लिखते हैं कि चूँकि देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न वजन प्रणाली विद्यमान थी इसलिए उनमें एक आनुपातिक सामंजस्य स्थापित करना आवश्यक था ताकि उन क्षेत्रों के व्यापारियों को एक दूसरे से क्रय-विक्रय सम्बन्धी कोई कठिनाई न हो। यही कारण था सिक्कों के आकार से अधिक भार सामंजस्य पर अधिक बल दिया गया। प्राचीन कालीन 'कार्षापण' नामक मुद्रा का निर्माण आहत प्रणाली से किया गया था, इसीलिए कार्षापण कई आकार में मिलते हैं। मुद्रा निर्माण प्रक्रिया में इसके उपरान्त कतिपय चिह्न कब और किसके द्वारा परिवर्तित किये गये? इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों के एक वर्ग का मानना है कि अब कार्षापण या पुराण जैसी आहत मुद्राओं की धातु की शुद्धता परीक्षण विभिन्न संस्थाओं द्वारा किया जाता था तो उन पर संस्थायें अपने-अपने प्रतीक चिह्न अंकित कर देती थीं। लेकिन विद्वानों के दूसरे वर्ग का यह मानना है कि सिक्कों पर सभी चिह्न एक साथ आहत किये जाते थें यह चिह्न छेनी (चनदबी) से अंकित किये जाते थे। लेकिन चिह्नों की अधिकता, स्थान की कमी या सुसंगठित ढंग से कार्य न करने के कारण चिह्न स्पष्ट रूप से अंकित नहीं हो पाते थे, बल्कि वे एक दूसरे को ढंक लेते

थे। आहत मुद्राओं में प्रतीक चिह्नों को अंकित करने में छेनी का प्रयोग किया जाता था, इसीलिए आहत प्रणाली द्वारा तैयार किये गये सिक्कों को 'पंचमार्क' के नाम से भी जाना जाता है।

मुद्रा निर्माण की ढलुआ प्रणाली-

प्राचीन भारत की मुद्रा निर्माण तकनीकी में आहत प्रणाली के उपरान्त ढलुआ प्रणाली का आविष्कार हुआ। इस प्रणाली के अन्तर्गत मुद्रा निर्माण का कार्य साँचे द्वारा सम्पादित किया जाता था। मिट्टी या धातु के साँचे तैयार किये जाते थे उसके उपरान्त धातु गला कर इन साँचों में डाल दी जाती थी। ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी से साँचे में ढाल कर सिक्के बनाये जाने लगे थे। संस्कृत साहित्य 'नैषधीयचरित' में सँचक शब्द का प्रयोग हुआ है। 'समरांगण सूत्रधार' में भी विभिन्न प्रकार के साँचों का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया गया है। डॉ. बीरबल साहनी ने अपनी पुस्तक 'टेक्नीक ऑफ कास्टिंग क्वायन्स इन इण्डिया' में बहुत अच्छे ढंग से सिक्कों को ढालने की प्रक्रिया का वर्णन किया हैं रोहतक, तक्षशिला, नालन्दा, काशी, साँची, मथुरा, सुनेत, अतरंजीखेड़ा, कडकल, कोण्डपुर इत्यादि पुरास्थलों से उत्खनन में साँचे प्राप्त हुए है। इनमें से सबसे प्राचीन साँचा रोहतक से प्राप्त हुआ है जिसका समय प्रथम शताब्दी ईसा पूर्व है। लेकिन तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व का काँसे का ठप्पा (क्पम) मध्य प्रदेश के एरण नामक स्थान से मिला है। लेकिन ठप्पा मुद्रा निर्माण पद्धति ढलुआ पद्धति के बाद ही आरम्भ हुई होगी।

मुद्रा निर्माण की ढलुआ पद्धति में सर्वप्रथम मिट्टी या धातु के साँचे तैयार किये जाते थे। अद्यतन केवल एरण से धातु निर्मित साँचा प्राप्त हुआ है। जबकि मिट्टी के बने साँचे बनाने से पहले मिट्टी में प्राय: धान की भूसी मिलायी जाती थी, भूसी मिली मिट्टी को गोलाकार धातु के चद्दद पर फैलाया जाता था। चद्दद के बीच में कील लगी रहती थी ताकि मिट्टी के फैलने पर भी बीच में छिद्र बना रहे। उस मिट्टी के तह तक नक्षत्र के आकर के लोहे के यन्त्र से दबाव दिया जाता था जिससे उस गोल मिट्टी के तह तक नई नालियाँ बन जाती थी। प्रत्येक नाली के अन्त में गोल सिक्के के चिह्न तथा लेखरहित साँचा बना रहता था। इस गोल सतह को मण्डलक (क्पी) कहते थे। वस्तुत: यही साँचे का भाग होता था जिसके मध्य में छिद्र था। पिघली हुई धातु इस केन्द्र से पतली नालियों से होकर सिक्के के साँचे के असली स्थान पर पहुँचती थी। मिट्टी में जो लेख और चिह्न बने रहते थे वे सिक्के पर अंकित हो जाते थे। निचले मण्डलक पर जो कुछ अंकित होता था वह अग्रभाग या पृष्ठभाग का चित्र होता था। दूसरा मण्डलक भी मिट्टी से तैयार किया जाता था जिसके दोनों ओर एक सी बनावट होती थी। एक मण्डलक के ऊपर दूसरा मण्डलक इस प्रकार रखा जाता था कि केन्द्र, नालियाँ से नालियाँ तथा सिक्के के स्थान से सिक्के का स्थान ठीक-ठीक बैठ जाय और पूरे साँचे का मुँह मिला हो। इस बनावट से पिघली हुई धातु के बाहर निकलने की संभावना नहीं रहती थी। इस प्रकार पूरे साँचे में एक साथ बहुत से सिक्के तैयार किये जाते थे। मिट्टी के मण्डलक के आधी गहराई तक चिह्न एवं लेख खुदे होते थे। सिक्के का ठीक उल्टा उसके साँचे में होता था फिर मिट्टी का बना साँचा भट्ठी में रख दिया जाता था। मण्डलक के केन्द्र में जो छिद्र होता था उसमें पिघली हुई धातु डाल दी जाती थी और वह स्तर में फैल जाती थी। एक सतह में जितनी नालियाँ रहती थीं उनसे होकर वह धातु सिक्के के असली साँचे में पहुँच आती थी। उस स्थान पर जो चिह्न व लेख मिट्टी के गहराई में खुदा रहता था वही उस धातु के टुकड़े पर उभर आता था। ठण्डा होने पर मिट्टी के पूरे आकार को तोड़ दिया जाता था और जो चित्रित गोलाकार धातु पिण्ड निकलता था, उसे सिक्के कहते थे। इस प्रणाली से एक साथ कई सिक्के बना लिये जाते थे। ठक्कुरफेरू कृत 'द्रव्यपरीक्षा' में साँचे में ढाल कर सिक्के तैयार करने की प्रणाली का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है। अभी तक अनेक पुरास्थलों के उत्खनन से मिट्टी की मुहरें मिली हैं। जिनका पूर्ण रूप से परीक्षण करने के पश्चात् यह निश्चय किया गया है कि वे सिक्का ढालने के साँचे थे। राजघाट (काशी) के उत्खनन सें ऐसे साँचों का टुकड़ा मिला है। ऐसे दो भागों को मिलाकर धातु पिण्ड का अग्रभाग तथा पृष्ठभाग का चित्र अंकित किया जाता था। कालान्तर में इस विधि से भी धातु को पिघलाकर साँचे में सिक्के के वास्तविक स्थान पर पहुँचाया जाता था, जिससे साँचा ठण्डा होने पर बिना तोड़े सिक्के को निकाला जा सके। साँची, काशी तथा नालन्दा में ऐसे ही साँचों का प्रयोग होता था। लेकिन विद्वानों का मत है कि एक साथ कई सिक्कों को ढालने की यह जटिल प्रणाली धीरे-धीरे छोड़ दी गयी क्योंकि यह विधि राजकीय टकसालों के हित में नहीं थी। इस प्राणाली से जालसाजी को बहुत प्रोत्साहन मिला। ऐसे बहुत से साँचे मिले हैं जिनका प्रयोग राजकीय टकसालों में भी पाया गया और साथ ही साथ वैसे ही साँचे जालसाजों के शिल्पशालाओं में भी देखने को मिले हैं। अत: एक समय में इस सिक्के ढालने की प्रणाली अपनाने के पश्चात् साँचे में धातु इस प्रकार डाली जाती थी कि सिक्का तैयार होने पर साँचे को ज्यों का त्यों बचा लिया जाय ताकि पुन: उसी साँचे का प्रयोग किया जा सकें। अत: मिट्टी को नष्ट होने से बचाने के लिए एक ही सिक्का ढालना उचित समझा गया। आज तक जितने भी साँचे मिले हैं वे सभी मिट्टी को पकाकर तैयार किये गये हैं लेकिन अपवाद स्वरूप एरण से मिले कांस्य धातु के एक

साँचे का उल्लेख आवश्यक है। परन्तु अभी तक इस कांस्य साँचे के अतिरिक्त धातु का अन्य कोई साँचा प्राप्त नहीं हो सका है। फिर भी कुछ विद्वानों का मत है कि साँचे लोहे और पत्थर के भी बनते थे। ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में कौशाम्बी, अयोध्या तथा मथुरा में साँचे में ढले हुये सिक्के तैयार किये जाते थे। जब से सिक्के ढाले जाने लगे तब से उनका आकार चौकोर से गोल कर दिया गया। फलतः सिक्के देखने में सुन्दर प्रतीत होने लगे।

मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणालीः-

ठप्पा प्रणाली मुद्रा निर्माण की तृतीय विधि है जो प्राचीनकाल से लेकर आज तक काम में लायी जाती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत जो चिह्न तथा लेख सिक्के पर उतारना होता था वही चिह्न और लेख ठप्पे (क्पम) में बने रहते थे। इस विधि में गरम धातु के टुकड़े पर ठप्पे के दबाव से चिह्न अंकित किये जाते थे। इस प्रकार आहत निर्माण प्रणाली एवं ठप्पे मार कर सिक्के बनाने की तकनीक में अन्तर इतना ही है कि जहाँ पहले लाँछन अलग-अलग बिम्ब टंकों से छापे जाते थे वहाँ उन सबको एक ही साँचे या ठप्पे में समेट लिया गया। साथ ही इस पद्धति द्वारा निर्मित सिक्कों पर लेख अंकित करने का नया तत्व जुड़ गया। इस विधि से समय तथा श्रम की बचत हुई। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली ढलुआ मुद्रा प्रणाली से उत्तम भी क्योंकि इस प्रक्रिया में साँचों का स्थान ठप्पों ने ले लिया तथा साँचा बनाने में जो कठिनाई होती थीं वह भी दूर हो गयीं ईसा पूर्व चार सौ वर्ष पुराने सिक्के मिले हैं जो ठप्पे मारकर तैयार किये जाते हैं। बोधिवृक्ष, स्वास्तिक तथा सिंह आकृति तक्षशिला के सिक्कों पर मिलती है जो ठप्पे मारकर तैयार किये गये हैं।

प्राचीन साहित्य में भी ठप्पे के प्रयोग के विवरण मिलते है। पाणिनी[10] ने भी रूप शब्द का प्रयोग किया है जो ठप्पे द्वारा तैयार सिक्कों के अर्थ में हुआ है। आकृतियुक्त ठप्पे के लिए 'रूप' शब्द का प्रयोग हुआ है। यह पारिभाषित शब्द बहुत समय तक प्रचलन में बना रहा। बाण ने भी हर्षचरित[11] में 'रूप' का प्रयोग ठप्पे के अर्थ में किया है। मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली की दो विधियां थी, प्रथम एकहरी ठप्पा प्रणाली तथा द्वितीय दोहरी ठप्पा प्रणाली।

एकहरी ठप्पा प्रणालीः-

इस प्रणाली द्वारा तैयार किये गये सिक्के के केवल एक ही ओर ठप्पे के प्रयोग से मुद्रा लेख एवं चिह्न अंकित किये जाते थे जबकि दूसरा भाग सपाट होता था। दोहरी ठप्पा प्रणाली मुद्र के दोनों ओर लाँछन अंकन के लिए सामान्य रूप से मुद्रा के अग्रभाग एवं पृष्ठभाग का प्रयोग एक साथ किया जाता था। इस शैली के सिक्कों को बनाने के लिये पहले नीचे वाले ठप्पे पर सिक्के के पृष्ठभाग के चिह्न आदि का टंकण किया गया, फिर उस पर गरम धातु रखकर अग्रभाग के चिह्नों को द्योतित करने वाले ठप्पे से दबाव डाला जाता था। गान्धार में सबसे पहले दोहरे ठप्पे से सिक्के तैयार किये गये। भारतीय गणराज्यों यथा-कुणिन्द औदुम्बर, यौधेय, आर्जुनायन आदि में दोहरे ठप्पे वाली प्रणाली को अपनाया गया। जनपद राज्यों यथा- अयोध्या, कौशाम्बी, मथुरा, पांचाल आदि में भी साँचे के बाद दोहरे ठप्पों का प्रयोग होने लगा। इस प्रकार धातु को पीटकर मुद्रा निर्माण की प्रणली को छोड़कर उसे गलाकर साँचे में ढालने की प्रणाली उपयोग में लायी गयी। पहले उन पर एक ओर लेख तथा चिह्न अंकित किये जाते थे जिसमें एक ठप्पे (Single die) की सुन्दर प्रणाली अपनायी गयी।

भारत में मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली (Die System Coinage) विशुद्ध विदेशी है क्योंकि ठप्पों द्वारा मुद्रा निर्माण की परम्परा की शुरूआत यूनानी शासकों ने की थी। यूनानियों द्वारा लायी गयी ठप्पा प्रणाली से निर्मित भारतीय मुद्रायें पहले से और अधिक सुडौल तथा कलात्मक बनने लगीं। मुद्रा निर्माण की ठप्पा प्रणाली, सिक्कों पर लेखों का अंकन तथा सिक्कों पर तिथि का अंकन विशुद्ध विदेशी तत्व माने जा सकते हैं। सिक्के जारी करना शासक का विशेषाधिकार होना, उस पर उसका नाम अंकित होना, उसकी उपाधि एवं उसका चित्रांकन आदि विदेशी परम्परा के मुख्य तत्व थे।

प्राचीन भारत में टकसाल तथा मौद्रिक विनिमयः-

प्राचीन भारत में टकसाल और मुद्रा के बढ़ रहे चलन के परिप्रेक्ष्य में भारत वर्ष के प्रारम्भिक धन सम्बन्धी उतार चढ़ाव को समझा जा सकता है।[12] कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस विषय की प्रथम सूचना उपलब्ध होती है। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व के प्रारम्भ में जब चन्द्रगुप्त मौर्य ने प्रथम भारतीय साम्राज्य की स्थापना की तो मुद्रा निर्माण प्रक्रिया को अत्यधिक महत्व देते हुए राजकीय टकसालों का निर्माण किया गया और 'लक्षणाध्यक्ष' तथा 'रूपदर्शक' जैसे अधिकारियों की नियुक्ति की गयी। यहाँ पर कौटिल्य की अर्थशास्त्र की कुछ पंक्तियाँ जो शामशस्त्री महोदय द्वारा अनुवादित हैं, प्रस्तुत की जा रही हैं, जिनसे यह विदित होता है कि टकसाल तथा मौद्रिक विनिमय की एक विशिष्ट भारतीय परम्परा रही है -

'लक्षणाध्यक्ष, रूप अर्थात् चाँदी के सिक्कों के निर्माण में चार भाग ताँबा तथा 1/16 भाग तीक्ष्ण, त्रपु, सीस, अंजन आदि धातुओं में से किसी एक का समिश्रण करके बनायेगा। एक पण, आधा पण, चौथाई पण तथा 1/8 पण की इकाई में सिक्कों का निर्माण किया जायेगा। ताम्ररूप अथवा ताँबे के सिक्कों में चारों भाग मिश्रित धातुओं का होगा और उनमें माषक, अर्द्ध माषक,

काकिणी एवं अर्द्धकाकिणी इकाईयों का निर्माण किया जायेगा। रूपदर्शक विनिमय के माध्यम तथा लीगल टेन्डर के रूप में कोष प्रवेश्य मुद्रा का नियमन करेगा। सिक्कों पर लिया जाने वाला अदेय 8% होगा और इसे रूपिक कहा जायेगा। 5% अदेय को ब्याजी कहा जायेगा और 1/8% को परीक्षिक अथवा परीक्षण फीस कहा जायेगा और इस सम्बन्ध में अपराधियों पर 25 पण का जुर्माना किया जायेगा। यह जुर्माना सरकारी निर्माताओं, विक्रेताओं, क्रेताओं एवं परीक्षकों पर नहीं लगाया जायेगा।'[13]

इसी ग्रन्थ में आगे कहा गया है कि- 'राजकीय सोनार नागरिकों तथा ग्रामवासियों द्वारा (सिक्के ढलवाने के लिए) लायी गयी धातुओं के सिक्के बनाने के लिए शिल्पियों की नियुक्ति करेगा। नियुक्त शिल्पी लोग उसके कार्यालय में ही निश्चित समय के अन्दर कार्य पूरा करेंगे। टकसाल का सोनार नागरिकों एवं ग्रामवासियों को उनके द्वारा लायी गयी धातुओं के भार और गुणवत्ता के बराबर सिक्के वापस करेगा। अधिक समय के अन्तराल के बाद भी सिक्के जो चलन में आने पर या अन्य कारणों से घिस चुके थे या चलन में आने योग्य नहीं रहे उन्हें टकसाल में पुनः वापस ले लिया जायेगा। राजकीय सोनार टकसाल में कार्यरत शिल्पियों से सोने की गुणवत्ता, शुद्धता तथा विनिमय दर आदि की सूचना लेते रहते थे। सोने या चाँदी को एक सिक्के का निर्माण करने के लिए एक काकिणी सोना अथवा चाँदी अधिक लिया जायेगा क्योंकि निर्माण प्रक्रिया में उतनी धातु का क्षय हो जाता है। जब सिक्कों की गुणवत्ता माशा के समुचित मापदण्ड से गिर जाती थी अर्थात् निम्न स्तर की हो जाती थी तब शिल्पकारों को दण्डित किया जाता था। मुद्रित सिक्कों में छलपूर्ण विनिमय करने पर पकड़े जाने वाले व्यक्तियों को जुर्माना के रूप में दण्ड दिया जाता था। यदि राज्य सरकार के अनुमकति के बिना टकसाल या सिक्का ढालने के निर्धारित स्थान के अन्यत्र सिक्कों का निर्माण किया गया तो सोनार को 12 पण तक का दण्ड दिया जाता था और तत्सम्बन्धित शिल्पकार को उसका दो गुना अधिक दण्ड दिया जाता था। यदि उसका पता न चल सका तो उसकी खोज की जाती थी तब उस पर 200 पण का जुर्माना होता था अथवा उसकी पाँच अँगुलियाँ काट ली जाती थीं। सिक्कों के वजन का संतुलन या विपरीत वजन की स्थिति पर टकसाल निरीक्षक पर 12 पण का जुर्माना लगता था।[14]

अर्थशास्त्र की उपरोक्त पंक्तियों से यह प्रकट होता है कि राज्य में सिक्कों का चलन किसी कानूनी निविदा पर ही निधर्ारित नहीं था, बल्कि वह विनिमय का माध्यम मात्र था। धातु की वरीयता के आधार पर अलग-अलग क्षेत्रों से सोने या चाँदी की सिल्लियों की शुद्धता तथा निर्धारण कार्य पूर्णतया कानूनी निविदा के द्वारा ही सुनिश्चित किया जाता था।[15] प्रत्यक्षतः वे सिक्के जो अन्य लोगों द्वारा लायी गयी सिल्लियों से निर्मित होते थे उनकी फेस वैल्यू (प्रत्यक्ष मूल्य) ही मुख्यतया मान्य थी न कि राज्य सरकार के कानूनी अधिकारियों के टेन्डर (निविदा) के दबाव या प्रोत्साहित करने पर। लेकिन ताँबे या चाँदी का धन (सिक्के के रूप में) का मुद्रण सरकार के कानूनी तौर तरीके से होता था और उसकी शुद्धता भी प्रमाणित थी। जैसा कि अर्थशास्त्र द्वारा दृष्टिगत होता है कि राज्य सरकार ने सोने की निविदा के लिए कोई कानूनी बाध्यता नहीं रखी थी। यदि उचित ढंग, वजन और प्रमाणित सिक्कों का चलन पिछले समय के राजाओं या उनके राजवंशों के समय से हो रहा हो तो किसी कानूनी निविदा को सिक्कों के ढालने की अनुमति बिल्कुल नहीं थी। जबकि यह सुनिश्चित करना आवश्यक समझा जाता था कि सिक्के खजानों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं या नहीं। विनिमय के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए वैसे सिक्के जो कानूनी निविदा द्वारा निर्गत थे, उनका मूल्यांकन करना भी आवश्यक समझा जाता था। न्यूनाधिक रूप से लीगल टेन्डर या विनिमय के माध्यम से सिक्कों का चलन प्रमाणित रूप से मध्यकाल तक चलता रहा।[16] ठक्कुरफेरू की 'द्रव्यपरीक्षा' के अनुसार जो अलाउद्दीन खिलजी तथा कुतुबुद्दीन के टकसाल अध्यक्ष थे, अलाउद्दीन का कोष ढेर सारे हिन्दू, गैर हिन्दू, समकालीन तथा गैर समकालीन शासकों की मुद्राओं से भरा पड़ा था। विभिन्न सिक्कों का विनिमय मूल्य उन सिक्कों की धातु की गुणवत्ता तथा भार के अनुसार प्रति जीतन मानक के आधार पर निर्धारित किया जाता था। डी.सी. सरकार[17] का कहना है कि टकसाल तथा मुद्रा की यह परम्परा शिवाजी के समय तक चलती रही, उन्होंने यह बताया कि मुम्बई के अंग्रेज व्यापारियों ने अंग्रेजी कम्पनी के रुपयों को अपने राज्य में चलवाने की अनुमति माँगी तो उन्होंने उत्तर दिया कि राज्य में किसी भी संख्या में किसी भी मुद्रा के प्रवेश पर कोई रोक नहीं है, किन्तु राज्य अपने व्यापारियों को इस बात के लिए बाध्य नहीं कर सकती कि कम मूल्य वाली मुद्रा विनिमय के उच्च दरों पर वे ग्रहण करें। इससे होता है कि किसी भी धातु के चलन में उसकी फेस वैल्यू का निर्धारण होना आवश्यक था।

इतना तो प्रत्यक्ष था कि इस प्रथा से टकसाल तथा मुद्रा सम्बन्धी विनिमय में कौड़ियों का सामान्य वस्तुओं के क्रय-विक्रय में चलन गुप्तकाल से दिखाई पड़ता है। फाह्यान ने इन कौड़ियों का प्रयोग व्ययपार विनिमय में देखा था।[18] बंगाल के मध्यकालीन शिलालेख जो कि पालों एवं सेनों के समय के हैं, वह इस ओर संकेत करते हैं कि सम्भवतः केवल कौड़ियाँ ही उनके समय की मुद्रा थीं।[19] इन कौड़ियों का चलन मध्यकाल में महाराष्ट्र तथा

कश्मीर में भी था।[20] यहाँ तक कि कुछ क्षेत्रों में ब्रिटिश सरकार ने चलन को 1885 ई. तक सहन करते हुए हस्तक्षेप नहीं किया।[21] सत्रहवीं शताब्दी में भारत आये थॉमस बोरी नामक यात्री ने विवरण प्रस्तुत किया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कौड़ियों का चलन ही एक मात्र धन के रूप में माना जाता था।[22] प्राचीन भारत में चल रही टकसाल तथा मुद्रा सम्बन्धी परम्परा का ऑकलन रानाडे महोदय के निम्न निरीक्षणों से किया जा सकता है- 'किसी सरकार को टकसाल बन्द करने का अधिकार नहीं है, विनिमय में चालू मुद्रा की न्यूनता या उसका बाहुमूल्य हो गया है तो यह विषय बैंक में पूंजी जमा करने वाले व्यापारियों या सौदागरों के सोचने समझने का है। यदि वे धन नहीं चाहते तो वे सिक्के जारी करने के लिए सोने चाँदी की सिल्लियों का लेखा-जोखा करके उसे टकसाल में भेजकर उसका मूल्य मुद्रा के रूप में चुकता करें'।[23]

इस प्रकार रानाडे व ऐसे ही अन्य विद्वानों के निरीक्षण ों तथा भारतीय ग्रन्थों मुख्यतया अर्थशास्त्र से प्राप्त साक्ष्यों से यह विविद होता है कि टकसाल तथा मौद्रिक विनिमय की एक विशिष्ट भारतीय परम्परा रही है।

सन्दर्भ :

1. 1. कनिंघम : क्वाइन्स ऑफ एन्शियन्ट इण्डिया, पृ. 43.
2. 2. व्हाइटहेड : प्री. मोहम्मडन क्वाइनेज ऑफ वेस्टर्न इण्डिया, पृ.42.
3. 3. एपीग्राफिया कारनाटिका, पृ. 57.
4. 4. सलेन: बी.एम.सी.ए.आई., पृ. 53.
5. 5. स्मिथ: कैटलॉग ऑफ क्वाइन्स इन दि इन्डियन म्यूजियम, पृ 35
6. 6. 'अयं निधि: सरसे अद्रिबुध्न: गोभि: अश्वेभि: नि: ऋष्ट:। रक्षन्ति ते पणय: ते सुगोपा: रेकुं पदं अलकंआ जगन्थ।।' -ऋग्वेद, 10.108.
7. 7. निधिं पणीनां परमं गुहा हितम् -ऋग्वेद, 2.24.6.
8. 8. ऋग्वेद, 5.334.7.
9. 9. मनुस्मृति, गीताप्रेस प्रकाशन, चौखम्भा, वाराणसी, पृ. 131
10. 10. अष्टाध्यायी, 5.2.120 (रूपादाहतं रुपयं कार्षापणम्).
11. 11. हर्षचरित, चतुर्थ उच्छ्वास,
12. 12. ओमप्रकाश : कन्सेप्च्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृ. 126.
13. 13. अर्थशास्त्र अनुवादित शामशास्त्री, चौखम्भा, वाराणसी पृ. 95-96.
14. वही, पृ. 94-95
14. 15. ओमप्रकाश : कन्सेप्च्युलाईजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृ. 127.
15. 16. वही, पृ. 127.
16. 17. जे.एन.एस.आई., वाल्यूम 7, सन् 1945, पृ. 78
17. 18. राय चौधरी : पी.एस.ए.आई. (चतुर्थ संस्करण), पृ. 469-70.
18. 19. आर.सी. मजूमदार : एच.बी. 1971, पृ. 667-9.
19. 20. जे.एन.एस.आई., 1945, पृ. 85.
20. 21. ओमप्रकाश : कन्सेप्च्युलाइजेशन एण्ड हिस्ट्री, पृ. 85.
21. 22. टेम्पल, आर.सी. : जी.ए.सी.बी., 1905, पृ. 200.
22. 23. जे.एन.एस.आई., वाल्यूम 7, पृ. 78

◆◆◆

(पृष्ठ 47 का शेष)झारखण्ड के कोल्हान.....

करके भाग जाते हैं। यदि गाँवों का विकास करना है तो कोल्हान विकास फंड को पुन: लाना होगा। विधायक और सांसद भी विधायक और सांसद निधि के बगैर काम नहीं कर सकते हैं। कोल्हान विकास फंड के द्वारा मानकी मुण्डा भी विकास का काम कर सकते हैं। हकूकनामे के अनुसार मानकी मुण्डा को राजस्व, पुलिस, प्रशासन, न्याय, भूमि बंदोबस्ती और वनाधि ाकार प्राप्त है। पंचायत के पदाधिकारियों मुखिया और उपमुखिया को भी यही अधिकार प्राप्त हैं। दोनों व्यवस्थाओं में कार्यों के बंटवारे न होने के कारण तनाव की स्थिति हमेशा बनी रहेगी। यदि मानकी मुण्डा व्यवस्था में आधुनिकीकरण के सकारात्मक प्रभावों को बनाए रखा जाए तो व्यवस्था भी बनी रहेगी और आधुनिकीकरण का वास्तविक रूप दृश्यमान होगा।

संदर्भ

1.जर्जोम्बेक, मार्क (2000), आधुनिकता का मनोविज्ञान, यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज.
2. गाँवकर, डी.ए.(सं.) (2001), वैकल्पिक आधुनिकता, ड्यूक यूनिवर्सिटी प्रेस, डरहम.
3. राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार पत्र, (2010)अनुसूचित जाति और जनजाति के बच्चों की समस्याएं.
4. वही, पृष्ठ 7.
5. बिरसा मुंडू, रैयत, ग्राम टोकाद, उम्र 45 से साक्षात्कार पर आधारित, दिनांक 22-05-16।
6. लक्ष्मण जामुदा, रैयत, उलीगुटू, खुंटपानी से साक्षत्कार पर आधारित, दिनांक 15-06-2018।
7. महतो, शैलेन्द्र (2011), झारखण्ड की समरगाथा, निधि बुक्स,दिल्ली, पृष्ठ 319.
8. सुन्डी, ललिता (2012), सिंहभूम की मानकी मुण्डा व्यवस्था: एक ऐतिहासिक अध्ययन, पृष्ठ 171.
9. महतो, शैलेन्द्र (2011), झारखण्ड की समरगाथा, निधि बुक्स,दिल्ली, पृष्ठ 321.
10. सुष्मा बिरूली, रैयत, राँची, उम्र 45 से साक्षात्कार पर आधारित, दिनांक 22-08-19।
11. सावैंया, अश्विनी कुमार (1973), कोल्हान की चिंगारी भाग 1, कोल्हान रक्षा संघ, चाईबासा, पृष्ठ 12.
12. विजय सुन्डी, मुण्डा, गाँव करकटा से साक्षत्कार पर आधारित।
13. धोबर कमीशन की रिपोर्ट (1956), पृष्ठ 24.
14. बसु, डी.डी. (2015), भारत का संविधान एक परिचय, लेक्सिस नेक्सिस, गुड़गाँव.
15. अनुसूचित क्षेत्र और अनुसूचित जनजाति आयोग, भारत सरकार की रिपोर्ट. (2005) वॉल्यूम 1, पृष्ठ 272.
16. हिन्दुस्तान, जमशेदपुर संस्करण, 09-01-2017
17. महतो, शैलेन्द्र (2011), झारखण्ड की समरगाथा, निधि बुक्स,दिल्ली.
18. शर्मा, बी.डी. (1990), रिपोर्ट आर्फे द कमिश्नर फॉर शेड्यूल्ड कास्ट एंड शेड्यूल्ड ट्राइब, 29 वाँ रिपोर्ट.
19. पाल, सुधीर (2017), ग्राम सभा नए लोकतंत्र की दस्तक, आधार प्रकाशन, पंचकूला, हरियाणा, पृष्ठ 34.
20. सुन्डी, ललिता (2012), सिंहभूम की मानकी मुण्डा व्यवस्था: एक ऐतिहासिक अध्ययन, पृष्ठ 167.
21. वही, पृष्ठ 171.
22. वही, पृष्ठ 172.
23. वही, पृष्ठ 175.

◆◆◆